'कस्तूरी कुण्डल बसै' (हिंदी) तथा 'एके जीणेची काणी' (कोंकणी) उपन्यासों में स्त्री जीवन : एक तुलनात्मक अध्ययन

किरण बुडकुले

प्रस्तुत आलेख के विषय चयन एवं हेतु के संबंध में प्रस्तावना स्वरूप थोड़ी-सी जानकारी देना मैं उचित समझती हूं। उपरोक्त उपन्यासों में मां-बेटी के माध्यम से नारी जीवन के विविध पहलुओं पर उपलब्ध आलेखों ने मुझे यह लेख लिखने के लिए प्रेरित किया। वस्तुतः इन कृतियों में नारी जीवन से जुड़े ऐहिक, दैहिक और नैतिक प्रश्नों के झंझावात उठते हैं। नारी के अस्तित्व का सामाजिक संदर्भ, उसका भूमि या संपत्ति की तरह उपभोग विनियोग का यथार्थ, अर्थव्यवस्था से जुड़ी स्त्री जीवन के वर्तमान एवं भविष्य की घोर वास्तविकता, नारी की शारीरिक जरूरतों की तथा भावनिक ऋजुता की अनदेखी, उसकी भावुकता का फायदा उठाने का भरसक प्रयास, उसकी लैंगिक प्रवृत्ति या निवृति को व्यक्तिगत इच्छा या मानसिकता के दायरे में देखने से इंकार, वास्तविकता के ठोस आधार के बजाय केवल परंपरा के बल पर नारी को सही या गलत ठहराने की कोशिश, नारी मन में उभरता निजी वैचारिक एवं भावनिक धारणाओं का संघर्ष, नारी के प्रति समाज की पक्षपातयुक्त नैतिक मूल्य-दृष्टि आदि प्रश्नों पर दोनों उपन्यासों में अलग संदर्भों में लेकिन समान दिशा में विचार मंथन हुआ है। अतः इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के दोनों लेखिकाओं के प्रयासों से न केवल उनकी विचार प्रणालियों का फर्क नजर आता है, बल्कि दोनों की वैचारिक प्रगल्भता के स्तरों पर अंतर भी स्पष्ट हो जाता है। इससे इन कृतियों का अध्ययन करने के लिए पर्याप्त आधार एवं उत्तेजना मिली।

उल्लेखनीय बात यह है कि दोनों कृतियों के विषय, वस्तु, स्वरूप एवं तंत्र की स्पष्ट समानता दिखाई देती है, फिर भी हेतु, आशय सूत्र, शिल्प एवं दृष्टांत में दोनों उपन्यासों में विलक्षण भिन्नता है। इसी कारण, इन कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करने की प्रेरणा भी हुई और सुविधा भी। भारत के दो अलग-अलग प्रान्तों में रहनेवाली, हिंदी तथा कोंकणी जैसी अलग भाषाओं में लिखनेवालीं, अलग पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करनेवालीं, समाज के एक ही वर्ण की होकर भी आर्थिक श्रेणी क्रम में विपरीत स्तर पर पलीं—इन दो स्त्री लेखिकाओं के सृजनात्मक झुकाव में इतनी समानता कैसे? मैत्रेयी पुष्पा और सुजाता सिंगबाळ के व्यक्तित्व की बनावट, जीवनदृष्टि, धारणा, विचार, मानसिकता, संवेदनशीलता आदि अलग होते हुए भी उनमें नारी जीवन की समीक्षा का समान लक्ष्य है।

दोनों लेखिकाओं ने स्मृति-विस्मृति का छोर पकड़कर उपन्यास के प्रमुख पात्रों

के जरिए उनके माताओं के जीवन कहानी को आधार मानकर वास्तव में खुद उन पात्रों की आपबीती कहलवाई है। 'कहलवाई' इसलिए कहना पड़ रहा है क्योंकि दोनों उपन्यास सत्य घटनाओं पर आधारित होकर भी, कल्पना विलास का लक्षणीय उपयोग करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा अपनी सृजनात्मक दुविधा को यह प्रश्न खुद उठाकर स्वीकार कर लेती है कि अपने कथ्य को उपन्यास कहूं या आपबीती? सुजाता सिंगबाळ की 'काणी' (कहानी) भी खुद चरित्र नायिका के शब्दों में बयान होने के बावजूद जान-बूझकर कल्पना की घटनाओं से लिप्त रखी गई है। मालूम पड़ता है कि दोनों लेखिकाएं किसी कारणवश 'सत्य' कथन का हेतु रखते हुए भी अपने-अपने उपन्यास में जीवनी तथा काल्पनिक कथन का संयुक्त उपयोग करने पर विवश हैं। भले ही उपन्यास खुद उनकी नायिकाओं का आत्मचरित्र ही क्यों न हो?

यहां विशेष बात है कि अपनी इस विवशता से दोनों ही लेखिकाएं अवगत हैं और उन दोनों ने अपनी विवशता के कारणों को स्पष्ट किया है। मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार, 'उपन्यास में वर्णित बहुत-सी बातें मेरे जन्म से पहले ही घटित हो चुकी थीं।....बाल्यावस्था की बहुत-सी घटनाएं याद रहीं; बहुत-सी विस्मृत हो गईं और बहुत-सी ऐसी थीं, जिसका छोर तो पास था, मगर वे किसी दिशा की ओर नहीं ले जाती थीं।....सब कुछ अपनी आंखों के सामने घटित हुआ, लेकिन फिर भी क्रम टूटता गया। जगह खाली रह जाती थी। वहां कल्पनाओं, अनुमानों के सूत्र जोड़ने पड़े।' (कस्तूरी : प्रस्तावना) उनके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि अगर उनकी कोई मजबूरी रही तो वह उनकी याददाश्त की कमजोरी थी या फिर सभी गत-घटनाओं में सुसंगति पाने में उनकी असफलता। यह केवल मानवसुलभ त्रुटि/बात या उनकी व्यक्तिगत क्षमता की 'लिमिटेशन' थी। इसे सृजनात्मक अभाव नहीं कह सकते। कल्पना के माध्यम से ऐसी छोटी-मोटी भूलों को सुधार लेना लेखिका की प्रतिभा का द्योतक है।

ऐसा ही कुछ सुजाता के बारे में भी कहा जा सकता है। उनकी मजबूरी का भी एक कारण है। लेकिन उसका संबंध याददाश्त की कमजोरी से नहीं, बल्कि यथाकाल अगर कहानी लिखी नहीं गई तो अनुभूति की उत्कटता कम हो जाने की संभावना से है। अपनी नायिका के साथ बिताए 'उन लम्हों का रंग उड़ जाने के' डर से जुड़ा है। लेखिका उपन्यास में ही स्पष्ट कर देती है कि उसके उपन्यास में वर्णित कहानी उसकी अपनी जीवनी तो नहीं, लेकिन किसी ज्ञात, नजदीकी स्त्री की जीवन-कहानी जरूर है। उसकी चरित्र-नायिका खुद लेखिका से कहती है, 'अरी, आज मुझे अपने जीवन से कुछ भी छुपाने की कोई इच्छा नहीं। जीवन की शाम हो चली है। न जाने कब मौत दबे पांव आकर झपट पड़े।....मेरी कहानी को कल्पना के रंगों में ढालकर लिख दे।....मेरी कहानी की काली छाया (शायद) मेरे (उर्वरित) जीवन पर पड़ेगी। इससे मैं नहीं डरती। (लेकिन) मेरे बच्चे हैं, उनकी घर-गृहस्थी है। मैं नहीं चाहती कि उनको इससे तकलीफ हो....।' (काणी : 2) लेखिका को डर है कि समय के साथ 'कहानी की यह परिचिता (औरत) मेरे लिए कहीं अजनबी न बन जाए।' (काणी : 2) इसलिए सुजाता तुरंत याने कि अपनी चरित्र-नायिका के जीवन काल में ही उसकी यह 'कहानी' उसी की जुबानी लिखती है। परंतु, नायिका को तथा उसके परिवार को संभाव्य बदनामी से बचाने के लिए उस कहानी को अपरिचित संदर्भ देकर कल्पना के रंगों में ढाल देती है।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि दोनों उपन्यास यथार्थ की मजबूत नींव पर भी कल्पना का हाथ थामने पर मजबूर हैं। फिर भी रचना में सर्जन की गहनता, बौद्धिक क्षमता एवं सौंदर्य-बोध की कमी नहीं आई है। वस्तुतः घटित एवं कथित कहने के लिए कल्पना का ऐसा ताना-बाना बुना गया है कि वास्तव तथा आभास के विभ्रम से उपन्यास यथार्थ प्रतीत होता है। इससे न केवल कथ्य की गहराई बढ़ती है, बल्कि आशयसूत्रों की संश्लिष्टता में वृद्धि होकर अनुभूति के नए आयाम उभरते हैं। सहज आकलन से परे जो उन अनुभूतियों के दायरे हैं, वे पाठक को भाते हैं। उसके सामने गूढ़ प्रश्न रखकर उसे निरुत्तर कर देते हैं। जैसे कि कस्तूरी और गौरा के आपसी संबंध किस तरह के हैं? उनके बारे में मैत्रेयी का मंतव्य उसके भ्रम का द्योतक है कि उसके भ्रमनिरास का? 'काणी' में वासंती की मौत खुदकुशी है या दुर्घटना या फिर हत्या? उसकी मुट्ठी में भिंची वसुधा के दादाजी की 'चैन' किस रहस्य का द्योतक है? ऐसे कई सवाल पाठक को निरंतर उत्तेजित करते रहते हैं। इस तरह के निवेदन-तंत्र के उपयोजन से उपन्यासों के अंतर्गत घटता नाट्य प्रभावशाली ढंग से गहराता

है, निखरता है तथा पाठक के मन के मंच पर कहानी का संघर्ष चरम सीमा पर पहुंचकर और खिलता है।

इन उपन्यासों के पात्रों के व्यवहार, चिंतन एवं बातचीत में एक अगम्य गहनता का दर्शन होता है। उदाहरण के लिए, 'कस्तूरी....' के संदर्भ में कहा जाए तो, मैत्रेयी के पिता हीरालाल को उपलब्ध कथ्य के आधार पर क्रांतिकारी कहा जाए या भगौड़ा? या फिर, उसके दादाजी मेवालाल के बारे में कौन-सा दृढ़ निष्कर्ष निकाला जाए : कि वह एक सूझ, सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल व्यक्ति थे या अपाहिज होने से बहू की इच्छा के सामने झुकने के लिए विवश वृद्ध? इसी तरह के बौखला देनेवाले प्रश्न 'काणी....' में भी उभर जाते हैं। उदाहरण के तौर पर देखें तो, वसुंधरा का पिता नाना अपने परिवेश का—खासकर पिता के दमन/दुर्व्यवहार का—शिकार था जो अपने पर थोपे हुए विवाह के प्रतिकार स्वरूप भाग खड़ा हुआ या असमंजस में निर्दोष पत्नी को त्यागकर अनजाने में ही सही अपने पुरुषी श्रेष्ठत्व का अधिकार जतानेवाला विवेकशून्य अहंकारी? अगर वह गृहस्थी की ओर से निवृत्त था तो फिर उसने दूसरी औरत के साथ कैसे गृहस्थी बसाई? प्रश्न और भी है : कस्तूरी का पुरुष की लैंगिक दृष्टि से घृणा करना, नारी के अधिकारों के प्रति अत्यधिक सजग रहना, पुत्री मैत्रेयी की स्त्री-सुलभ वासनाओं-आकांक्षाओं की उपेक्षा करना, क्या उसकी विकृति नहीं है? उसी तरह, शेंवतें आका की वासंती के प्रति दुर्भावना, द्वेष कुंठा का सही कारण क्या है? परित्यक्ता होकर भी वासंती ने खुले दिल से संजोयी हुई जीवन के प्रति आस्था? या युवा विधवा शेंवते आका ने खुद पर थोपे परम्परा के खोखले निर्बन्ध जिनका बाह्य आचरण मन की स्वाभाविक अस्वस्थता पर काबू नहीं पा सकता? ऐसे अनेक अनुत्तरित प्रश्नों से दोनों उपन्यासों में प्रस्तुत जीवन का परिप्रेक्ष्य ज्यादा घना, धुंधला और शायद इसीलिए, पूर्ण रूप से वास्तव सदृश्य लगता है। इस हद तक दोनों उपन्यास समांतर रास्तों से गुजरते नजर आते हैं।

लेकिन विषय चुनने के पीछे सर्जक का जो हेतु कार्यरत रहता है, वह दोनों कृतियों को अलग खड़ा कर देता है। मैत्रेयी पुष्पा के लिए 'कस्तूरी.....', अपनी मां को 'निकट से जानने की पीड़ा और प्रक्रिया' भी है तथा 'यथार्थ की तरह अपने तीखे-मीठे अनुभव लिखकर माताजी रूपी संस्कार को अपने 'सिस्टम से निकालने का' प्रयास भी। और तो और, उनके लिए यह कथानक लिखना 'अपने बाहर-भीतर को पछीटने-खंगालने का' प्रयत्न भी है। सुजाता के लेखकीय हेतु के बारे में ऐसी व्यक्तिनिष्ठता या संदिग्धता नहीं मिलती। वह किसी परिचित सुहृदा की कहानी इसलिए बताना चाहती है क्योंकि 'उसकी कहानी आज मन पर अस्वस्थता बनकर छा गई है।....दिन गुजरते जाएंगे तो शायद उन लम्हों का रंग ही उड़ जाएगा। कहानी की वह स्त्री मेरे लिए एक अपरिचिता बन जाएगी....।' इससे मालूम पड़ता है कि सुजाता की 'काणी....' एक ओर से अस्वस्थता का विरेचन करने का प्रयास है तो दूसरी ओर से किन्हीं गुमशुदा पलों को सृजन में पकड़ने की कोशिश!

दोनों के लेखकीय हेतुओं में वस्तुनिष्ठ नजरिया निभाने की क्षमता है। फिर भी 'कस्तूरी....' की लेखिका ने काफी हद तक आत्मकथा जैसी प्राकृतिक तौर पर व्यक्तिनिष्ठ विधा में वस्तुनिष्ठता का प्रमाण दिया है। भले ही उन्होंने अपनी 'जीवनी' को 'उपन्यास' कहा हो, लेकिन उसमें जो यथार्थ है वह वास्तव में उनकी निजी जिंदगी का अटूट हिस्सा है और तो और, इस कथ्य का केंद्र बिंदु मैत्रेयी तथा उनकी माताजी कस्तूरी का आपसी रिश्ता है जो परस्पर प्रेम, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों के धागों से बुना है। याने की, मां-बेटी का यह आपसी नाता इसी विरोधाभास का शिकार है। ऐसी स्थिति में निवेदिका का अपने दृष्टिकोण को प्राथमिकता देना सहज है। लेकिन मैत्रेयी, लेखिका के रूप में, अपने आप में बसी चरित्र-नायिका एवं चरित्र-लेखिका के दो अलग....प्रस्तुत संदर्भ में तो बेमेल-किरदारों को प्रामाणिकता तथा वस्तुनिष्ठता से बखूबी निभाती है। उनकी आत्मनिष्ठा जितनी सराहनीय है उतनी ही उनकी तटस्थता लक्षणीय है।

यह सच है कि, व्यक्तिनिष्ठता एवं वस्तुनिष्ठता के परस्पर विरोधी छोरों के दरम्यान समता बनाए रखने की कोशिश उनकी सृजना को निरंतर झकझोरती रहती है। इस कोशिश का अनुपात उसके कथन एवं तंत्र में भी भांपा जा सकता है। सुवर्णमध्य खोजने के प्रयास में वे एक ही व्यक्ति या घटना को एक से ज्यादा दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करने की चौकसी बरतती हैं कि हर 'क्रूशियल' घटना या मध्यवर्ती पात्र अपने विविध आयामों के साथ पाठक से मिले, ताकि ठोस मतमतान्तर के पश्चात् पाठक उस घटना या पात्र के सत्यासत्य के बारे में अंतिम निर्णय कर सके।

इसलिए कोई भी घटना या चरित्र अपने पूर्ण रूप में किसी भी अध्याय में प्रस्तुत नहीं होती। पाठक की समझने, परखने की प्रक्रिया उपन्यास के अंत तक जारी रहती है। कई बार इस तंत्र के उपयोजन के कारण, पाठक की संवेदना को ठेस पहुंचती है, तो कभी उसका अपने आकलन क्षमता पर से विश्वास उठ जाता है। मैत्रेयी और उसके पति का उपन्यास में चित्रित जो रिश्ता है वह पाठक को गुमराह कर देनेवाला है। कोई भी ठोस निष्कर्ष निकालना उसके वश में नहीं। कमोबेश मात्रा में ऐसी दुविधाजनक स्थिति का अनुभव पाठक को और भी पात्रों-प्रसंगों के संदर्भ में होता है।

उदाहरण के तौर पर, उपन्यास के शुरुआती अध्यायों में चित्रित कस्तूरी के नजरिए में चाची (याने की उसकी मां) की छवि को देखा जा सकता है। अपने बेटों की जिंदगी संवारने के एकमेव उद्देश्य से कमसिन कस्तूरी को निरंतर उसकी मर्जी के खिलाफ किसी भी अनमेल विवाह की ओर धकेलने की ताक में बैठी चाची पुरुषसत्ताक व्यवस्था की निरी एजंट लगती है। लेकिन जब गांव में कुर्की का ऐलान होता है, लगान देने के सारे रास्ते बंद नजर आते हैं, तब वही चाची, यह जानते हुए कि 'कारिन्दों के संग गोरे आ गए तो कारिन्दे उन्हें खुश करने के लिए औरतों को उनके आगे धकेलेंगे', खुद आगे हो जाती है ताकि बेटी बच जाए।' (कस्तूरी : 15) तब कस्तूरी का पत्थर कलेजा फट जाता है और वह सोचने लगती है, 'इस विपत्ता में मां-बेटी का रिश्ता खत्म होता जा रहा है, सो हम सखी-सहेली हो उठें! दो औरतों जैसे।' (कस्तूरी : 15)

मां-बेटी के ऐसे ही रिश्ते में शायद मैत्रेयी और कस्तूरी के भावी नाते की नींव गढ़ी है क्योंकि मैत्रेयी भी अक्सर अपने अनुभवों के आधार पर तथा अपनी समझ के अनुसार कस्तूरी को कठोर, जिद्दी, अहंकारी तथा भावनाशून्य ठहराती है। उसका निष्कर्ष उसकी आप बीती पर निर्भर होने से एक दृष्टि से सही भी है। लेकिन वह कस्तूरी की मजबूरी, उसकी दुविधा समझ नहीं पाती। ममत्व एवं कर्तव्य में से किसे चुने? मैत्रेयी की शिक्षा एवं उसका सानिध्य इन दोनों का एक साथ निर्वाह कैसे करे? जैसे-जैसे मैत्रेयी की उम्र बढ़ती है, जानकारी एवं समझदारी में वृद्धि होती है तथा भले-बुरे नए अनुभवों की गंगाजलि उसे प्राप्त होती है, वैसे-वैसे उसका मां के प्रति लगाव-दुराव घटता-बढ़ता जाता है। उनका रिश्ता स्थायी रूप में किसी प्रबल तनाव का प्रकट रूप बनकर रह जाता है। इस रिश्ते के विविध पहलू समझाने में पूरे उपन्यास में छिड़के हुए कई पात्र-प्रसंग पाठक का साथ देते हैं। कभी सत्य समझाकर, कभी सत्य की बुनियाद ढहाकर....।

कस्तूरी-मैत्रेयी का रिश्ता केवल माता-पुत्री के बीच का संघर्ष बनकर नहीं रहता। कभी वह दो स्वतंत्र व्यक्तित्वों के बीच छिड़ी जंग का ऐलान बनकर, तो कभी दो अहंभावी मानसिकताओं के बीच सुलह की कोशिश बनकर, तो कभी दो विचारधाराओं के दरम्यान बना अमिट फासला बनकर सामने आता है। इसका सबसे अच्छा सबूत मैत्रेयी एवं कस्तूरी के दादाजी मेवाराम के प्रति अलग दृष्टिकोणों में मिलता है। हालांकि दोनों ही उनके प्रति आदर-प्रेम कृतज्ञता का भाव रखती हैं। किंतु भूतकाल में सांसारिक स्वार्थ एवं संदेह से झुलसी कस्तूरी का नजरिया श्रद्धा तथा विश्वास के अभाव में, केवल विचार से प्रेरित होकर कभी-कभार सशंक हो उठता है। उदाहरण के लिए, जब पुत्र हीरालाल की आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् मेवाराम चुपचाप कचहरी जाकर जायदाद पर अपना हक जताते हैं, तो कस्तूरी समझ नहीं पाती कि उसके ससुर का प्रयास जायदाद को उसी के (कस्तूरी के) भाइयों की खोटी नीयत (जिसके पर्याप्त प्रमाण भी मिले हैं) से बचाने का है। दूसरी ओर, भावुक, प्रेम की निरंतर प्यासी मैत्रेयी ऐसे संदेहों से कभी नहीं झकझोरी जाती। उसने तो दादाजी से मां-समान ममत्व पाया है, उसके लिए वही सब कुछ है। उनकी मृत्यु के बाद वह सचमुच अकेली हो जाती है।

कुछ ऐसी ही भावुकता का दर्शन हमें 'काणी'...में वसुधंरा के चरित्र में प्रतीत होता है। वह भी हमेशा से प्यार की भूखी रही है। और ठीक मैत्रेयी की तरह ही उसकी आजी (दादी) के देहांत के बाद अपने ही घर में केवल अकेली ही नहीं बेसहारा भी हो जाती है। खुद को मानो 'आश्रित' समझने लगती है। इस दरम्यान उसे अभि का साथ बड़ा आत्मिक बल देता है, लेकिन दोनों के चाहने पर भी उनका प्यार सफल नहीं हो पाता। अभि की शादी उसी की चचेरी बहन से हो जाती है। लेकिन अपने ब्याह के पश्चात् भी वसू अभि का प्यार भुला नहीं पाती। मन में वह अपने निर्विकार, आत्ममग्न पति की छवि लगा नहीं पाती। इस भावुकता के अंग से देखें तो वह कुछ-कुछ मैत्रेयी की मानसिकता के करीब लगती है। लेकिन और

कई मामलों में वह कस्तूरी की तरह ही मजबूत एवं (अपनी मर्यादाओं के होते हुए) आत्मनिर्भर है।

कस्तूरी प्रकृति से, मनोबल से, शिक्षा तथा कमाई से स्वावलंबी एवं स्वतंत्र बनकर जी सकती है। वसू के पास दृढ़ इच्छाशक्ति, स्वाभिमान तथा अपनी सीमाओं के भीतर समाज के दबाव की उपेक्षा करने की आंतरिक ताकत है। सारी उम्र जीवन में एक रिक्तता का अनुभव करने के बावजूद वह उसके लिए न किसी को जिम्मेवार मानती है न किसी से तकरार करती है। वह स्वावलंबी नहीं है, लेकिन ढलती आयु में उसे पुत्र का सहारा एवं बहू का प्रेम प्राप्त होता है। वह चुपचाप पति से अलग होकर मुंबई में पुत्र के साथ रहने लगती है। सामाजिक नोंक-झोंक का उस पर कोई असर नहीं होता। मैत्रेयी की तरह उसके पास भी भावुकता के साथ-साथ आत्मबल है परन्तु उसके जैसी न मेधा है न वैचारिक प्रगल्भता! उसने भी उपेक्षा, दुख और शोषण झेला है। वह कस्तूरी की तरह ही किसी संन्यासिनी की तरह विरक्त जीवन बिताती है लेकिन उसके पास कस्तूरी की तरह न ध्येयवाद है न सामाजिक दृष्टि!

दोनों उपन्यासों में असुरक्षित परिवेश में रहने को बाध्य स्त्रियों के शोषण पर प्रकाश डाला गया है। लेकिन असुरक्षिता के मायने दोनों संदर्भों में भिन्न हैं। 'काणी' में सुंदर, चैतन्यशील तथा जीवन में आस्था रखने वाली वासंती की शादी नाना जैसे जीवन से उन्मुख एवं विरक्त व्यक्ति के साथ नाना की मर्जी के खिलाफ रचाई जाती है। लेकिन, इसका खामियाजा वासंती को भुगतना पड़ता है। नाना घर छोड़ के चला जाता है। पेट में पलती वसुंधरा के लिए ही सही लेकिन वासंती हंस-खेल कर जीना चाहती है लेकिन उसकी विधवा ननद शेंवतें यह सह नहीं सकती और हर पल उसे कोसती-फटकारती रहती है। उसकी सास उसका दर्द समझती है लेकिन वह खुद अपने पति की तानाशाही तथा स्वैराचार से उत्पीडित है। उसके पास न कोई अधिकार है न आवाज। युवा वासंती अंततः अपने बदफैली ससुर की हवस का शिकार हो जाती है। लेकिन इसका परिणाम उसे अपने जीवन के हाथ धोकर भुगतना पड़ता है।

'कस्तूरी....' में भी कस्तूरी की विवाह के बारे में अनिच्छा चाची याने कि उसकी मां को महत्त्व देने लायक नहीं लगती। लड़की उसके लिए महज एक बोझ है जिसे जल्द-से-जल्द ब्याहकर उतार देना चाहती है। फिर, कस्तूरी का विवाह एक सौदा भी है जिससे खेत-खलिहान नीलामी से बचाए जा सकें या घर के निकम्मे तथा बीमार लड़के की शादी के लिए पैसा ऐंठा जाए। जिस तरह से वह कस्तूरी से कलसियां गिरवी रखवाकर लगान के पैसे जमा करती है, ठीक उसी तरह कस्तूरी का भी पैसों के लिए शादी के नाम पर जैसे सौदा ही करती है। यह सौदा केवल सामाजिक नहीं, आर्थिक भी है। इसके दो पहलू हैं एक है बिकी हुई चीज का और दूसरा गिरवी रखी चीज का। कस्तूरी के घरवाले उसे आठ सौ रुपयों में खरीदी गुडिया मानकर उस पर हक जताते हैं। वह उस घर की जैसे मुफ्त गुलाम बन जाती है। घर का काम, खेत का काम सब वही निभाती है। उसका पति जब घर छोड़कर शहर भाग जाता है तब कस्तूरी को ही घर-गृहस्थी संभालना पड़ता है। अपने ससुर और मैत्रेयी की पूरी देखभाल करना पड़ता है। फिर भी उसका पति जमींदार की पत्नी से मेलजोल रखने से और उसके जरिए अकाल के दौरान गांव वालों को मदद पहुंचाने से उसी के चरित्र पर शक करने से नहीं कतराता। दूसरी ओर, उसके भाई उसे शायद अपने घर की गिरवी रखी कलसी समझते हैं। इसीलिए शायद, जब उसके पति की मौत होती है तब उसके घर पर जैसे धावा बोल के अपना स्वार्थ सीधा करना चाहते हैं। एक बार तो उनके इरादे कस्तूरी के ससुर की सतर्कता से धूल में मिलते हैं। लेकिन वे अपनी करतूतों से आसानी से बाज नहीं आते। इस तरह, विधवा बहन की जमीन-जायदाद पर बुरी नजर रखना उनकी मानसिकता का दर्शन कराता है जिसके तहत लड़की ब्याह कर भी उसका शोषण किया जा सके। एक ओर से देखें तो विवाह लड़की से पल्ला छुड़ाने का बहाना होता है, और दूसरी ओर से जब वह बेसहारा हो जाती है तो वही विवाह नए सिरे से हक जताकर उसके नाम पर उसी का हक लुटने का बहाना भी हो सकता है।

पाठक आशा करता है कि कस्तूरी के शिक्षा प्राप्त करने से तथा मुक्त विचार एवं प्रगतिशील तत्त्वों का पुरस्कार करने से उसके विचार लड़की तथा विवाह के बारे में सुधारवादी होंगे। लेकिन ऐसा नहीं होता। कस्तूरी की प्रगतिशीलता उसी के हठ तथा एकांगी दृष्टिकोण का शिकार हो जाती है। वह 'स्त्री-मुक्ति' की तीव्र पिपासा से वास्तव एवं व्यवहार को पूरी तरह अनदेखा कर देती है। लेकिन, दुख और अचरज की बात यह है कि वह बेटी को शिक्षा

के नाम पर दर-ब-दर भटकाकर ऐरे-गैरे के लैंगिक शोषण का शिकर बनाने में अनजाने में ही सही कोई कसर नहीं छोड़ती। अंततः मैत्रेयी जब केवल 'सुरक्षितता' के कारण ब्याह की कामना व्यक्त करती है तब भी वह अपनी बेटी का मन नहीं जान सकती, न ही कोशिश करती है। इस तरह वह मैत्रेयी की विवाह करने की इच्छा को केवल अपने पुरुषद्वेष तथा उदात्त तत्त्वों या आदर्शों के लिए बड़े अर्से तक टाल देती है। अंत में बड़ी अनिच्छा से बेटी का ब्याह कराने को तैयार हो जाती है।

यहां 'काणी' में वसू अपने ही पैतृक घर में, बचपन से मां-बाप की नियति का बोझ ढोती हुई, आश्रित जैसी पलती है। हां उसे दादी का भरपूर प्यार मिलता है लेकिन उसका सहारा अधिकार से जीने के लिए काफी नहीं होता। उसकी विधंवा बुआ जिसका घर में दबदबा है, वह उसे हमेशा ही उसकी मां वासंती की औलाद के रूप में देखती है। इसलिए वासंती की मौत के पश्चात् उसके हिस्से का द्वेष एवं तिरस्कार वसू को ही हरदम सहना पड़ता है। अभि, उसकी दूसरी बुआ का लड़का, वसू की तरह ही आश्रित है और परिस्थितिवश, वसू का प्यार भुलाकर उसकी चचेरी बहन 'सुमा' से शादी करने के लिए मजबूर हो जाता है। वसू को पेट में पलता बच्चा गिराकर, अपनी मां की तरह की पापन होने का एक और बोझ लिए विवश होकर शादी करना पड़ता है। उसकी विवाह विषयक अनिच्छा कोई नहीं सुनता। वह एक जिम्मेवारी निभाने का दस्तूर है और वह निभाया जाता है। उसकी अपने पति से बनती है कि नहीं? वह सुखी है कि नहीं? ऐसे प्रश्नों के लिए किसी के पास न समय है न दिलचस्पी!

यहां उपरोक्त दोनों उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन से जाना जा सकता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आमतौर से लड़की का विवाह उसकी इच्छा के अनुसार नहीं होता न ही उसकी मर्जी से टाला जाता है। वह चाहे 'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास के नाना के पिता की तरह सर्वाधिकारी, स्वार्थी पुरुष हो, या 'एके जीणेजी काणी' उपन्यास की शेंवतें आका जैसी परंपराग्रस्त, पितृव्यवस्था से बंधी अज्ञानी कुंठित स्त्रियां, या कस्तूरी जैसी सुशिक्षित, मुक्त विचारोंवाली महिलाएं। काल स्वतंत्रतापूर्व हो या समकालीन प्रगत युग, आम स्त्री जो इन दो कृतियों चित्रित है वह अब तक न पुरुष सत्ता से और न ही गलत धारणाओं से ग्रस्त मानसिकता से मुक्त हुई है।

'काणी' में परित्यक्ता वासंती अपने दुर्भाग्य पर रोना-धोना स्वीकार नहीं करती। व्यक्तिस्वातंत्र्य की समर्थन करनेवाली प्रगतिशील विचारों की महिला है। लेकिन शेवतें आका के लिए यही उसके नैतिकता पर प्रहार करने की वजह बन जाती है। केवल व्यक्ति की दैहिक जरूरतों की स्वीकृति करना एवं शरीर के प्रति मन के प्राकृतिक प्रवृत्तियों का तिरस्कार न करना उसके लिए मानसिक अत्याचार एवं शारीरिक शोषण की वजह हो जाता है। 'कस्तूरी' में भी स्त्री के शारीरिक जरूरतों तथा प्रवृत्तियों का संदर्भ आता है। कस्तूरी को पुरुष से घृणा है। लेकिन उसका गौरा के साथ कैसा रिश्ता है? उपन्यास में यह संबंध संदिग्धता को सूचित करता है। उसे दो स्त्रियों की महज दोस्ती कहें या समलिंगी घनिष्टता? 'काणी' में वासंती अपने देह से खास प्रेम करती है। क्या इसे केवल शरीर से 'लगाव' ही समझना चाहिए? या लैंगिक अतृप्ति की आपूर्ति?

दोनों उपन्यासों में स्त्री के अस्तित्व का प्रश्न केवल सामाजिक-आर्थिक स्तर पर ही नहीं देखा गया है। स्त्री की मानसिक गुलामी, लैंगिक आकांक्षाएं तथा पुरुष प्रधान समाज-व्यवस्था में उसके शील एवं नैतिकता से जुड़े प्रश्न दोनों लेखिकाओं ने प्राथमिकता देकर उठाए हैं। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री जीवन के परिप्रेक्ष्य को सामाजिक-आर्थिक विचार-प्रणालियों के नजरिए से देखकर उसके भाव जीवन की गुत्थी को सुलझाने का भरसक प्रयास करती है। सुजाता सिंगबाळ केवल मानसिक तथा भावात्मक मुद्दों के बल पर ही स्त्री जीवन की गुत्थी की नैय्या संवारने की चेष्टा करती है। किंतु ठोस वैचारिक आधार के अभाव में सुजाता के प्रश्न बढ़ते ही जाते हैं, उसकी चरित्र नायिका को कोई भी आंतरिक सहारा अंत तक नहीं मिल पाता।

परंतु मैत्रेयी के बारे में ऐसा नहीं होता। वैचारिक परिपक्वता के कारण उसकी चरित्र नायिका को असंख्य संकटों के बावजूद नई दृष्टि मिलती है। मुक्ति का क्षितिज उसे नजर आता है। जब वह अपनी नवजात शिशु की आंखों में देखती है तो उसे खुले आकाश का विशाल प्रतिबिम्ब दिखाई देता है और धरा की कारा टूटने का एहसास भी प्रतीत होता है। उसकी नन्हीं-सी पुत्री समकालीन स्त्री के भविष्य का, उसकी मुक्ति का तथा भावी माता-पुत्रियों के स्वस्थ रिश्तों का मानो एक सुभग प्रतीक बन जाती है।